गृहस्थ भी निर्वाण मार्ग पर चल सकता है

गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति॥१८॥

गृहकार्य करते हुए, हेयाहेय का ज्ञान।
ध्यावे सदा जिनेश पद, शीघ्र लहे निर्वाण॥

अन्वयार्थ – **(गिहिवावार परट्ठिया)** जो गृहस्थ के व्यापार में लगे हुए हैं **(हेयाहेउ मुणंति)** तथा हेय उपादेय को (त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य) को जानते हैं **(अणुदिणु जिणु देउ झायहिं)** तथा रात-दिन जिनेन्द्रदेव का ध्यान करते हैं **(लहु णिव्वाणु लहंति)** वे भी शीघ्र निर्वाण को पाते हैं।

वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण १०, सोमवार, दिनाङ्क १३-०६-१९६६
गाथा १८ से १९ प्रवचन नं. ७

---

१८ वीं गाथा। देखो! इस गाथा (में ऐसा कहते हैं) – गृहस्थाश्रम में भी अनुभव हो सकता है। समझ में आया? उसकी यह गाथा है। देखो! **गृहस्थ भी निर्वाण मार्ग पर चल सकता है।** गृहस्थ में रहनेवाला जीव, मोक्ष के मार्ग पर चल सकता है। ऐसा नहीं है कि साधु ही मोक्षमार्ग में चल सकता है, यह बात यहाँ पर मुख्य स्थापित करने को यह बात करते हैं। देखो!

गिहि-वावार-परिट्ठिया, हेयाहेउ मुणंति।
अणुदिणु झायहिं देउ जिणु, लहु णिव्वाणु लहंति॥१८॥

क्या कहते हैं? गृहस्थ में – व्यापार-धन्धे में लगा होने पर भी, संसार में

-गृहस्थाश्रम का व्यापार-धन्धा होने पर भी, **हेयाहेउ मुणंति** – छोड़ने योग्य क्या है और आदर योग्य क्या है ? – इसका उसे ज्ञान होता है। क्या कहा समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी, उसके ज्ञान में गृहस्थाश्रमी को धर्म होता है, किस प्रकार ? कि हेय अर्थात् पुण्य-पाप का राग उत्पन्न होता है, व्यापार-धन्धे का या पूजा, भक्तिभाव का परन्तु वह हेय है – ऐसा ज्ञान उसे वर्तना चाहिए। समझ में आया ? है ?

मुमुक्षु – किसे वर्तना चाहिए ?

उत्तर – गृहस्थ को।

मुमुक्षु – सम्यग्दृष्टि को या मिथ्यादृष्टि को ?

उत्तर – मिथ्यादृष्टि की यहाँ कहाँ बात है ? हेयाहेय का ज्ञान सम्यग्दृष्टि को (वर्तता है)। यहाँ तो गृहस्थाश्रम में धर्म हो सकता है और मोक्ष के मार्ग में चल सकता है – यह बात यहाँ सिद्ध करनी है। ऐसा नहीं है कि गृहस्थाश्रम में अपने से कुछ नहीं किया जा सकता, हम कुछ नहीं कर सकते; यह तो मुनि हो – त्यागी हो, उसे होता है – ऐसा नहीं है।

मुनि, उग्ररूप से अन्तर के आनन्द के पुरुषार्थ से बारम्बार अतीन्द्रिय का आनन्द लेते और शीघ्ररूप से मोक्ष का उत्कृष्ट साधन करते हैं। उत्कृष्ट साधन करते हैं। गृहस्थाश्रम में उसके योग्य आत्मा का उपादेयपना... आया न ? हेय-उपादेय। गृहस्थाश्रम में हो, धन्धे में हो, फिर भी उसे प्रत्येक क्षण रागादि, पुण्यादि, पापादि भाव, वे हेय हैं; परवस्तु – शरीरादि की क्रिया होती है, उनका मैं कर्ता नहीं हूँ – ऐसा उसे-सम्यग्दृष्टि को प्रतिक्षण ज्ञान वर्तता है। पाप के, पुण्य के भाव भी आयें, देह की क्रिया हो (परन्तु) उन सबको हेयरूप जानता है। समझ में आया ? और उपादेयरूप से त्याग।

हेय और उपादेय को – त्यागने योग्य और ग्रहण करनेयोग्य को जानता है। यह आत्मा शुद्ध चैतन्य परमानन्द की मूर्तिस्वरूप है; वही मुझे आदरणीय और ध्यान करने योग्य है – इस प्रकार गृहस्थाश्रम में सम्यग्दृष्टि इस तरह वर्तन कर सकता है। कहो, समझ में आया इसमें ? कितने ही कहते हैं – गृहस्थाश्रम में यह अनुभव और आत्ममार्ग नहीं होता। यहाँ तो गृहस्थाश्रम में निर्वाणमार्ग होता है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – वह आठवें में होता है।

उत्तर – यहाँ श्रावक को आठवाँ कहाँ था?

मुमुक्षु – मुनि को सातवें में होता है।

उत्तर – मुनि का इसे कहाँ कोई भान है?

यहाँ तो निर्वाण अर्थात् आत्मा ही निर्वाणस्वरूप है। क्या कहा? भगवान आत्मा ही मोक्षस्वरूप है। वह तो स्वयं है। अब उसे मोक्षस्वरूप का साधन स्वयं में है, वह कैसे नहीं कर सकता? समझ में आया? आत्मा का स्वभाव त्रिकाल है। एक समय का विकार, वह छोड़कर – वह हेय है, वह हेय है और पूरा स्वरूप अखण्डानन्द पूर्ण प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, वह उपादेय है – ऐसा स्वरूप तो स्वयं का है। स्वयं का ऐसा स्वरूप है और स्वयं का काम वह गृहस्थदशा में न कर सके – ऐसा कैसे हो सकता है? समझ में आया? शशीभाई! समझे? उपादेय; आत्मा स्वयं चीज है, अनन्त आनन्दगुण का पिण्ड है। अब वह स्वयं है, वह उपादेय है – ऐसा कैसे नहीं कर सकता? रतिभाई! यह सूक्ष्म बात है। नजदीक की बात (है) – ऐसा कहते हैं।

गृहस्थाश्रमी आत्मा है या नहीं? इस गृहस्थाश्रमी को भी आत्मा है या नहीं? तो आत्मा है, वह अपना स्वभाव शुद्ध रखकर पड़ा है। वीतरागस्वरूप और आत्मा के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है – ऐसा अपना स्वरूप है। उसका उपादेयपना ग्रहण करके और उसका साधन भी उसमें है; उसका साधन कोई बाह्य क्रिया में या राग में नहीं है। समझ में आया? वस्तु स्वयं अनन्त आनन्दादि शुद्ध है। उसे उपादेयरूप से ग्रहण करके साधन भी (उसमें है)। राग को दूर से (छोड़कर).... रागादि विकल्प और परवस्तु दूर (है)। वह दूर जो चीज है, वह साधन नहीं है। इसमें है, वह साधन है। आहा...हा...! समझ में आया? मनसुखभाई! यह दुकान-बुकान, धन्धा उसके घर रहे – ऐसा कहते हैं। यह रागादि हो परन्तु उसके घर.... रागादि हेयरूप वर्तते हैं। इसके अन्तर में शुद्ध परमात्मा... मैं शुद्ध आनन्द हूँ – ऐसी वस्तु जो है, उसे उपादेय (करके) 'यही मैं हूँ' – ऐसा मानना, उसका नाम उपादेय (है)। समझ में आया? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल – ऐसा मेरा आत्मा का स्वरूप है। वीतराग के स्वरूप और मेरे स्वरूप में

परमार्थ से कोई अन्तर नहीं है। उनकी पर्याय में निर्मलता है परन्तु उनकी निर्मलता जो पूर्ण है – ऐसा पूर्ण मेरा वस्तु का स्वभाव है। ऐसी अन्तर में रुचि करके, दृष्टि करके उपादेयरूप से आत्मा का स्वीकार करना। इस गृहस्थाश्रम में कहाँ आत्मा चला गया है कि स्वीकार न किया जा सके? – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

गृहस्थाश्रम में भी आत्मा तो आत्मा है। वहाँ दूर दृष्टि थी, पर के ऊपर राग और पर (के ऊपर थी), उसे समीप में कर (कि) यह आत्मा। समझ में आया? और उसका मार्ग भी शुद्ध है। वस्तु शुद्ध है तो उसकी अन्तर में श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका आचरण – यह स्वभाव का साधन भी शुद्ध है। यह भी अपने समीप में से ही आता है; यह कहीं दूर (पदार्थ में से) राग में से नहीं आता। तब गृहस्थाश्रम में आत्मा को मोक्ष का मार्ग क्यों नहीं हो सकता? – ऐसा कहते हैं, अर्थात् हो सकता है।

वस्तु स्वयं है, उसका ज्ञान करे और यह कीमती चीज है, दूसरी कोई चीज मेरी दृष्टि में कीमती नहीं है। राग नहीं, अल्पज्ञता नहीं, पर नहीं; यह महान पदार्थ (आत्मा) कीमती है – ऐसा जहाँ दृष्टि में उपादेयरूप से वस्तु है, उसे ग्रहण करने की, आदर करने की, उसमें स्थिरता करने जैसी यह चीज है – ऐसा जहाँ दृष्टि में उपादेय आया तो वह क्यों गृहस्थाश्रम में नहीं हो सकता? समझ में आया? और उसका साधन भी अन्दर स्वभाव है।

ज्ञानानन्द चैतन्यस्वभाव.... उस अन्तर में अपने शुद्ध स्वभाव की एकाग्रता का साधन भी उसके समीप में, नजदीक में उसमें है। बजुभाई! आहा...हा...! समझ में आया? वस्तु स्वयं है। वह कहते हैं – **गिहिवावार परट्ठिआ हेयाहेउ मुणंति** – क्योंकि उपादेय चीज स्वयं है, उसे क्यों साधनरूप नहीं कर सकता? इसमें समझ में आया? भगवान आत्मा परमानन्द का रत्न है, वह परमानन्द का रत्नस्वरूप स्वयं है – ऐसा उसकी दृष्टि में जहाँ आदर आया, अर्थात् स्वभाव के साधनरूप आत्मा स्वयं है और उसके अन्तर में एकाग्र होने पर साधन की पर्याय प्रगट होवे, वह भी स्वयं के समीप में से होती है; वही कहीं राग में से, निमित्त में से नहीं होती। हैं?

मुमुक्षु – धंधार्थी को कुछ बाधा नहीं है।

उत्तर – हाँ! धंधार्थी का भाव वह नहीं। यह तो कहा – धंधार्थी का भाव हेय है परन्तु उस काल में भी धंधार्थी के जीव की शक्ति का सत्व है या नहीं? – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। **गिहिवावार** इतना शब्द है न? गृहस्थाश्रम का धन्धा और व्यापार होने पर भी, एक बात। वह **परट्ठिया** उसमें रहा, फिर भी हेय – ऐसे गृहस्थ के व्यापार को, रागादिभाव को, अशुभभाव को, धन्धे के भाव को, इस पुण्यभाव को, इस शरीरादि की क्रिया को हेय जाने। यह नहीं, यह नहीं और आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, वह मैं। कहो, समझ में आया? कहो, रतिभाई! तू है और तेरा नहीं कर सके – इसका अर्थ क्या है? है!

हेय-उपादेय को, त्यागनेयोग्य और ग्रहण करनेयोग्य जानता है, जाने। ज्ञान में उसका विवेक वर्ते, विवेक वर्ते कि यह परमानन्दस्वरूप आत्मा (वह मैं हूँ) परन्तु उसका ख्याल पहले शास्त्र से, गुरुगम से, तीव्र जिज्ञासा.... उसका फिर उपादान (लिया)। जैसा उसका स्वरूप है, उसे पहले जानना चाहिए। जाने तब उसकी महिमा में उसकी दृष्टि जाये। ओ...हो...! यह आत्मा, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण लबालब भरा है, जिसमें ज्ञान और वीर्य आत्मा में पूर्णानन्द पड़ा है, पूर्ण पड़ा है। ऐसा अनन्त गुणस्वरूप भगवान आत्मा तू स्वयं है, तो गृहस्थाश्रम के व्यापार के काल के समय यह आत्मा चला गया है? इस आत्मा को उपादेयरूप से श्रद्धा, ज्ञान में ग्रहण करे और रागादि को हेय जाने, गृहस्थाश्रम में यह आत्मा का धर्म हो सकता है। कहो, समझ में आया?

बरकत कब आती थी? उसमें बरकत कब आती थी? धूल में... यह जानता है कि जितना पुण्य होगा तद्नुसार वह आता है और यह मुझे कमाने का भाव होता है, वह पाप है, हेय है, दुःखदायक है – ऐसा जानता है। समझ में आया?

हेय जाने उसमें बरकत का लाभ अधिक कहाँ से होगा – ऐसा (कहते हैं)। लाभदायक माने तो लाभ होगा। ऐसा लाभदायक माने तो लाभ होगा... लाभदायक न माने तो लाभ किस प्रकार होगा? ऐसा होगा? मनसुखभाई! इन्हें पूछो इन्हें, यह दो बैठे हैं, देखो! काका-भतीजा, दो बैठे हैं यह। दोनों बड़ा धन्धा करते हैं वहाँ। समझ में आया?

यहाँ तो इतनी बात है कि जो शरीर, वाणी, मन की क्रियाएँ होने के काल में होती हैं, वे तो चैतन्यतत्त्व में नहीं है और चैतन्य उन्हें कर्ता नहीं है; इसलिए गृहस्थाश्रम में उसका

ज्ञान हो सकता है कि यह छोड़ने योग्य अथवा लक्ष्य करने योग्य नहीं है। अब गृहस्थाश्रम में जो रागादि के, धन्धे के परिणाम होते हैं, उनसे अधिकपने चैतन्य अन्दर अनन्त गुण का धाम विराजमान है, उसे उपादेयरूप से स्वीकार करके राग को हेयरूप से स्वीकार किया जा सकता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? उसे राग में रस नहीं रहता, व्यापार में रस नहीं रहता – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – धन्धे में रस न ले तो रुपये किस प्रकार कमाये ?

उत्तर – धूल में भी पैसा कमाता नहीं, कौन कमाता है ? यह कमाता है ? यह तो पुण्य के कारण आते हैं, आना हो तो आते हैं, न आना हो तो नहीं आते हैं। कैसे होगा इसमें ? बहुत ध्यान रखे तो आते होंगे न भण्डार में ? नहीं ?

मुमुक्षु – उसमें तो ढेर मजा आता है।

उत्तर – धूल में क्या आवे ? कहो, समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो कहते हैं, दो बात – एक तो तू और एक तुझसे विरुद्ध विकार और दूसरी जाति जड़। अब, गृहस्थाश्रम में यह दो चीजें और तीन है या नहीं ? धन्धा व्यापार होने पर भी आत्मा अन्दर से चला गया है ? यह धन्धा के परिणाम दुःखरूप हैं, हेयरूप हैं, आदरणीय नहीं हैं – ऐसा उनका ज्ञान इसे करना चाहिए ? और इससे रहित त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द शुद्ध हूँ। उसका अन्तर्मुख होकर आदर करना चाहिए। ऐसा गृहस्थाश्रम में क्यों नहीं होगा ? गृहस्थाश्रम में धन्धे के काल में भी आत्मा भिन्न पड़ा है – ऐसा कहते हैं। ए... हरिभाई ! धन्धे के काल के परिणाम में और क्रिया के धन्धे के काल में, धन्धे की क्रिया जड़ की, जड़ की होगी या क्या होगी ? रतिभाई ! यह सब तो जड़ की क्रिया है। यह कहाँ तुम करते हो ? ऐसा हिलना-चलना (होता है), वह सब जड़ की क्रिया है, आत्मा उसे नहीं करता है।

वह तो मूढ़ है, यह तो कहता है गृहस्थाश्रम में तू रहा है, फिर तू न माने और नहीं कर सकता, उसे माने.... तुझसे दूर जा तो वह तेरी भूल के कारण है। समझ में आया ? हम यह खतौनी लिखते हैं, हम दुकान की व्यवस्था करते हैं, दुकान चले, उसमें ध्यान रखते हैं तो दुकान व्यवस्थित चलती है।

मुमुक्षु – ऐसा ध्यान न रखे तो तैयार किस प्रकार होंगे ?

उत्तर – धूल में भी तैयार नहीं होता, उसके काल में होना हो वह होता है।

यह तो बात ही क्या कही ? समीप नहीं... यहाँ तो धन्धे के परिणाम के काल में और धन्धे की क्रिया के काल में, यहाँ आत्मा है या नहीं ? ऐसा यहाँ तो कहते हैं; या अकेला है वहाँ ? यहाँ धन्धे के राग के अशुभ परिणाम भले (हों) – हिंसा, झूठ, विषय आदि... और यह बाहर देह की क्रिया लिखना यह सब अजीव का कार्य वह अजीवतत्त्व की अवस्था की सत्ता है या नहीं ? यहाँ रागादि धन्धे की सत्ता का भाव विकारी है या नहीं ? उसके सामने पूरी त्रिकाली ज्ञायक सत्ता है या नहीं ? समझ में आया ? कहो, प्रवीणभाई ! आहा...हा... !

महान प्रभु चैतन्य, ज्ञान से भरपूर समुद्र प्रभु, आनन्द का महासागर – ऐसा आत्मद्रव्य तू स्वयं ही है। अब जहाँ तू है, वहाँ धन्धे के परिणाम के काल में तू कहाँ चला गया है ? परन्तु तेरी नजर राग और पुण्य पर है; इसलिए तू उन्हें आदरणीय और करने योग्य मानता है परन्तु तेरी नजर राग और पुण्य पर है, इसलिए उन्हें तू आदरणीय और करने योग्य मानता है। यह भगवान ज्ञायकमूर्ति आत्मा पूर्णानन्द का नाथ वह मैं हूँ। रागादि होते हैं, देहादि की क्रिया तो जड़ की (क्रिया), जड़ का अस्तित्व है, परसत्ता है, परपदार्थ है; तो उसकी अवस्था तो होती ही है न ? वह अवस्था कहीं मुझसे नहीं होती। समझ में आया ?

मुमुक्षु – आज तो बहुत सूक्ष्म आया ?

उत्तर – सूक्ष्म कहाँ है ? जहाँ गृहस्थाश्रम में भी कोई कहे कि छूटने का मार्ग नहीं हो सकता – उसके लिये यह स्पष्टीकरण है। छूटने का मार्ग.... छूटा हुआ तत्त्व, ज्ञायकमूर्ति तू है और उसके स्वभाव के साधन द्वारा छूटने का उपाय हो सकता है, इसलिए धन्धे के परिणाम और बाह्य क्रिया द्वारा यह नहीं हो सकता – ऐसा नहीं है। शशीभाई ! आहा...हा... ! परन्तु मूल तो प्रभाहीन होकर उसे गिना ही नहीं। आभाहीन... आभाहीन। वे सोटी से मारे न ? आभा बिना का। यह देखता (नहीं) और इसे महिमा नहीं आती, परन्तु वह स्वयं ही है।

जिनेश्वर कहो या आत्मा.... यहाँ आगे कहेंगे, जिन का ध्यान, जिन का ध्यान

अर्थात् तेरा। समझ में आया ? तू वस्तुपने जिनस्वरूप ही है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अब उसे, है उसे दृष्टि में न ले और जो इसमें नहीं है, ऐसे रागादि की और क्रिया को दृष्टि में ले, यह तो इसकी स्वयं की वस्तु है फिर भी भूल कर भाव करता है, यह तो इसके ज्ञान में स्वतन्त्र है। अब वस्तु जो है, एक समय में भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति, उसका अन्तर में स्वीकार होना कि यह आत्मा वह मैं। इसका स्वीकार होने पर उसमें रागादि विकल्प उत्पन्न हों, वह उसके स्वरूप में नहीं है; इसलिए उन्हें हेयबुद्धि में रखकर, उपादेयबुद्धि में चैतन्य को रखकर दोनों के बीच का हेयाहेय का ज्ञान, विवेक कर सकता है। आहा...हा... ! हैं ? आहा...हा... ! समझ में आया या नहीं ? लक्ष्मीचन्दजी ! समझ में आता है या नहीं ? क्या नहीं कर सकता ? – ऐसा कहते हैं।

क्या तेरा आत्मा चला गया है ? सिद्ध समान सदा पद मेरो। सिद्ध समान आत्मतत्त्व है, तुझे पता नहीं। तुझे (तेरी) महिमा नहीं है, तेरे ज्ञान में उसकी महिमा नहीं आवे और फिर कहे मुझे धर्म करना है... कहाँ से धर्म करेगा ? धर्म करनेवाला धर्मी महान पदार्थ है ऐसी बुद्धि गृहस्थाश्रम में भी उपादेयरूप से हो सकती है। आहा...हा... ! इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान आत्मा गृहस्थाश्रम के धन्धे की पर्याय में हो या बाह्य क्रिया में निमित्तरूप से उपस्थित दिखता हो, तथापि उसे हेय जानकर अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप को उपादेय जानकर, उस अन्तर के आनन्द में वर्त सकता है। अन्तर के आनन्द में वर्त सकता है – ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई ! अन्तर के आनन्द में स्वीकार कर सकता है, राग को हेय कर सकता है और किसी काल में उस आनन्द के अनुभव में वर्त सकता है। आहा...हा... ! शशीभाई ! आहा...हा... ! उपयोगरूप की बात की है।

मुमुक्षु – प्रत्येक समय भोगता है।

उत्तर – वह तो है ही। यह तो आनन्द के वर्तन में उपयोगरूप भी आनन्द का अकेला वर्तन हो जाये – ऐसा कहते हैं। गृहस्थाश्रम में भी निर्वाण – छूटने के मार्ग में पड़ सकता है। गृहस्थाश्रम में बँधने का मार्ग एक ही है – ऐसा नहीं है। आहा...हा... ! समझ में आया इसमें ? बात यह है कि यह प्रभु आत्मा कितना है – यह बात उसके ख्याल में आनी चाहिए। उलझा हुआ ही पड़ा है, अनादि से मूढ़। यह दया, दान, व्रत के परिणाम,

धन्धे के परिणाम बस, हमने किये। यह पूजा-भक्ति की, परन्तु वह तो राग है। समझ में आया? और यह पर का (कार्य) होता है, उसमें खड़ा हो वहाँ (ऐसा) लगता है कि देखो! यह मैंने ध्यान रखा, इसलिए यह हुआ। ये लोग ध्यान नहीं रखते तो नहीं होता। लो! ऐसा भी कितने ही कहते है न? हैं? यह कोई कहता था, कोई कहता था। यह तो उस समय कौन खड़ा था, उसका ज्ञान कराने के लिये कहा है। वरना कौन रजकण को बदल सकता है? समझ में आया? वे गये, कल रात्रि में गये.... आहा...हा...!

इस गाथा में क्या कहते हैं? ऐसी गाथा एक ६५वीं आयेगी। समझ में आया? कि गृहस्थाश्रम में भी... गृहस्थाश्रम अर्थात् क्या? गृहस्थ, गृह-स्थ अर्थात् घर में रहना अर्थात् यह धन्धे के परिणाम, हिंसा के, झूठ के पाप उसमें वह पर्याय में रहा है परन्तु कोई द्रव्य है या नहीं पूरा वहाँ? समझ में आया? पूरा तत्त्व / द्रव्य पड़ा है या नहीं? पूर्णानन्द का नाथ जिसमें अनन्त सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं – ऐसे आत्मा को दृष्टि में उपादेय करके, यही आदरणीय है; रागादि चाहे तो पुण्य, दया, दान, व्रत के, पूजा, भक्ति के परिणाम हों या चाहे तो धन्धे के, हिंसा-झूठ, भोग के हों परन्तु वे दोनों परिणाम हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं। इसलिए दृष्टि में सब राग का त्याग (होता है)। इसके आदर में राग का त्याग हो जाता है। आहा...हा...! समझ में आया?

दृष्टि में भगवान पूर्णानन्द का स्वीकार होने पर पूर्ण परमेश्वर का आदर आया। दृष्टि में पूर्ण आत्मा के स्वीकार से पूर्ण परमेश्वर को स्वीकार किया। आत्मा का सत्कार अर्थात् परमेश्वर का सत्कार किया और हेय रागादि के परिणाम होने पर भी, दृष्टि में उनका त्याग हो गया है। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। इसलिए गृहस्थाश्रम में भी राग के त्यागरूप, स्वभाव के आदररूप धर्म हो सकता है। आहा...हा...! कहो चिमनभाई! इसमें सत्य है या नहीं? आहा...हा...!

देखो! यहाँ तो इन्होंने जरा लिखा है। **उसका साधन भी एकमात्र अपने शुद्ध आत्मिक स्वभाव का दर्शन अथवा मनन है।** लो, आत्मा का स्वभाव.... भगवान जैसा है – ऐसा अन्तर में बैठना, स्वीकार होना चाहिए न? एक ओर रागादि को लाभ माने, पैसे का लाभ माने, तो इस स्वभाव का लाभ किस प्रकार मान सकेगा?

बाहर में धूल भी लाभ नहीं है। कहाँ लाभ था ? समझ में आया ? पाँच-पचास लाख हुए, दो करोड़-पाँच करोड़ हुए – उसमें आत्मा को क्या ? वह तो जड़ है, वे कहाँ इसकी आत्मा में आ गये हैं ? मुझे मिले हैं – ऐसी ममता का भाव, वह ममता का भाव इसके पास है और होने पर भी समता का पिण्ड चैतन्य एक ओर है। अकेला वीतरागी भाव... समता-वीतरागी अकषायस्वभावस्वरूप आत्मा है। कहते हैं कि ऐसी ममता के काल में भी समता का पिण्ड चला गया है ? बस ! तेरा स्वीकार यहाँ चाहिए और उसका अस्वीकार चाहिए। समझ में आया ?

अणुदिणु जिणु देउ ज्ञायहि देखो ! **और रात-दिन जिनेन्द्रदेव का ध्यान करता है।** जिनेन्द्र का अर्थ वीतराग। उस वीतरागभाव का ध्यान (करता है)। अन्दर उसकी लगन लगी है। गृहस्थाश्रम में जिनेन्द्र अर्थात् वीतराग आत्मा... वीतराग भगवान और आत्मा में कुछ फर्क वस्तु में नहीं है – ऐसा सम्यक्त्वी गृहस्थाश्रम में, धन्धे में, हजारों रानियों के वृन्द में पड़ा हो... समझ में आया ? तथापि **'अणुदिणु' और रात-दिन जिनेन्द्रदेव का ध्यान करता है।** वीतराग... वीतराग... उसके आदर करने में स्वभाव में शुद्धता... शुद्धता... शुद्धता... आदरणीय है; अशुद्धता आदरणीय नहीं है। ऐसा न होवे तो सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में ऐसा होवे तो धर्म हो सकता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

साधन भी अपना अपने में है। ढूंढ़ने जाना पड़े ऐसा है ? कि अब इसका – मोक्ष का उपाय क्या है ? उपाय कौन ? तू तेरे सन्मुख देख और उसमें स्थिर हो, वह उपाय है। समझ में आया ? परन्तु बात यह है कि इसे महिमा नहीं आती है। इसे कुछ बाहर का यह करूँ और वह करूँ और यह करूँ, यह हो और यह हो और यह हो.... जो इसमें नहीं है, वह होवे तो धर्मलाभ होता है। यह देखो न ! हैं ? आहा...हा... ! पैसा-लक्ष्मी खर्च करें, मृत्यु-भोज करें, मन्दिर बनायें, रथयात्रा निकालें, पाँच-दस लाख प्रभावना करें तो अन्दर धर्म हो... परन्तु यह चीज तो पर है, उसमें कदाचित् तेरा शुभराग हुआ तो वह शुभ (भी) पर है, वह आत्मा में नहीं है। इसलिए पर को पररूप से – हेयरूप से जाने बिना उपादेयरूप से चिदानन्द का ज्ञान इसे यथार्थ नहीं हो सकता और उपादेयरूप से इसे

आदरणीय जाना, रागादि हेयरूप से वर्ते, फिर उसमें लाभ का कारण कहे तो वह तो नुकसान का कारण है। शुभ-अशुभभाव होता है वह नुकसान का कारण है। समझ में आया? इसमें समझ में आया?

यह रोटी अकेली हो, तब तो फिर खा जायेंगे, तो कल कहाँ से लाना? परन्तु यह खजाना कम हो – ऐसा नहीं है; ऐसा खजाना तेरे पास है, यह कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

गृहस्थाश्रम में एकदेश, एक भागरूप तो साधन हो सकता है न? बड़ा भाग – साधन मुनि करते हैं। बड़े भाग का साधन मुनि करते हैं। मुनि अर्थात् यह बाहर के त्यागी वे मुनि नहीं हैं, कहते हैं। अन्तर के स्वरूप में शुद्ध चिदानन्द का भान होकर, विशेष स्थिर हो अन्दर, उग्र आनन्द को वेदन करे, बड़ा भाग - साधन वह करे। यह बाह्य क्रियाकाण्डी है, वह तो साधु है ही नहीं। समझ में आया? अन्तर में आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द का – पूर्णानन्द का आदर करके उसमें विशेष लीनता करे और बिल्कुल राग का अत्यन्त अभाव (हुआ हो) – ऐसी स्वभाव की दशा को उच्च मोक्ष के मार्ग का भाग कही जाती है। आहा...हा...! बड़ा भाग वह लेती है परन्तु छोटा भाग इसे मिलता है – ऐसा है या नहीं? शशीभाई! परन्तु यह भी अभी पता नहीं है... बाहर से फुरसत में बैठे हों, निवृत्त हो तो आहा...हा...! देखो न! बेचारे कैसे (त्यागी हैं)? परन्तु वे सब भटकनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं, तुझे पता नहीं है। यह देह की क्रिया मैं करता हूँ, यह रागादि – दया, भाव, पुण्य के, भक्ति के भाव आते हैं और मुझे धर्म है – ऐसा माननेवाला अनन्त वीतरागी परमेश्वर आत्मा का अनादर करता है। उसे त्याग एक अंश का भी नहीं है। समझ में आया? रतनलालजी! आहा...हा...!

जहाँ दृष्टि में अकेला चैतन्य प्रभु पूर्णानन्द का नाथ जहाँ आदरणीय में पड़ा है, उसे पूरा संसार-उदयभाव दृष्टि में त्यागरूप वर्तता है। वह बड़ा त्यागी हुआ... मिथ्यादर्शन का त्याग होने पर, आत्मा का आदर होने पर उसे सबका त्याग हो गया। ऐसे त्याग के बिना बाह्य की क्रिया, त्याग-छोड़कर – अन्दर में राग का भाव, दया व्रत का आवे, उससे मेरा कल्याण होगा, उस मूढ़ ने पूरा त्याग किया है – आत्मा का; राग का नहीं, पाप का नहीं;

उसने आत्मा का त्याग किया है। मोहनभाई! यह त्याग किया है, उसने भगवान आत्मा का और ज्ञानी ने त्याग किया है सम्पूर्ण रागादि विकल्पों का। जिस भाव से तीर्थंकर कर्म बँधता है, उस भाव का भी दृष्टि में त्याग है – ऐसी त्याग और ग्रहण की दृष्टि (का पता नहीं चलता)। यहाँ त्याग-ग्रहण कहा न? हेय-उपादेय कहा था न? हेय-उपादेय शब्द में अन्तर में इतना पड़ा है, हाँ! समझ में आया?

अन्तर में... प्रभु अन्तर में विराजता है और उसका साधन राग से दूर (ऐसा) अन्दर साधन समीप है। अन्तर में एकाग्र होना, वह उसका साधन है। अब ऐसे साधन को और ऐसे साधन के ध्येय को न जाने, उसे यह हेय या उपादेय तो ज्ञान में वर्तता नहीं, इसलिए उसे आत्मा का त्याग वर्तता है परन्तु राग का त्याग दृष्टि में नहीं है। धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में पड़ा है। छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में (होवे)... समझ में आया? छियानवें हजार स्त्रियों के भोग में पड़ा हो, समकिती छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियों के भोग में (होवे), उस भाग के काल में भी अन्दर दृष्टि में (उसका) त्याग वर्तता है। मेरा आनन्द प्रभु मेरे पास है। अरे...रे...! यह समाधान नहीं होता, इसलिए राग आता है। उस अस्थिरता को हेयरूप जानता है और पूरा भगवान आनन्दमूर्ति को उपादेयरूप से जानता है और दूसरे ही क्षण ध्यान में आ जावे तो अतीन्द्रिय आनन्द का ध्यान भी कर लेता है। आहा...हा...! समझ में आया?

एक ओर ऐसे भोग की वासना की विकल्प में फँस गया था, तथापि अन्दर दृष्टि तो पड़ी है। अन्दर दृष्टि पड़ी है आत्मा पर... यह भगवान आत्मा मेरा सच्चिदानन्द प्रभु ही मुझे आदरणीय है। समझ में आया? ऐसे स्वरूप में गृहस्थाश्रम में भी स्व-स्वरूप पूरा है, उसे कोई क्यों आदरणीय नहीं कर सकता? ऐसा कहते हैं। वह तो अपने स्वरूप का माहात्म्य नहीं है; इसलिए विकार और पर के माहात्म्य में इसकी नजरें गयी हैं। इस कारण मिथ्यात्व में पड़ा हुआ अनादि से पर का माहात्म्य करता है परन्तु जहाँ स्व का माहात्म्य गृहस्थाश्रम में रहने पर भी आया, यह भगवान एक ही मेरा अखण्डानन्द प्रभु, यह मुझे स्थिरता का स्थान, विश्राम का धाम, यह लीनता का स्थान, विश्राम का स्थान होवे तो आत्मा है। ऐसी जिसने अन्तर्दृष्टि और ज्ञान में निर्णय किया हो, उसे पूरा रागादि (भाव),

जिस भाव से पूजा-भक्ति होती है, उस भाव को भी त्यागबुद्धि से देखता है। आदरबुद्धि नहीं देखता। समझ में आया? आहा...हा...! लो, भाई! बहुत समय हो गया, हाँ! इतने में चालीस मिनट हुए।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू है या नहीं? है तो कितना? अनन्त गुण का समुद्र है, ज्ञानस्वरूप से भरपूर है, तू आनन्द का कन्द है, तू वीर्य का पिण्ड है, तू शान्ति का सागर है, अनन्त पुरुषार्थ के वीर्य से भरपूर पदार्थ है, स्वच्छता का धाम है, प्रभुत्व के परमेश्वर का अनेक ऐसे अनन्त गुण में – एक-एक गुण में प्रभुता से भरा हुआ वह प्रभु तू है। समझ में आया? ऐसे प्रभुत्व से भरपूर भगवान को जिसने गृहस्थाश्रम में रहने पर भी, श्रद्धा-ज्ञान में स्वीकार किया, वह अनन्त काल से जिसका त्याग वर्तता था, उसे ग्रहण किया और अनन्त काल से रागादि, पुण्यादि परिणाम को ग्रहण करने योग्य मानता था, उसके त्याग में प्रवर्ता। आहा...हा...! समझ में आया?

अणुदिणु झायहि फिर **झायहि** शब्द है न? जिनेन्द्रदेव का ध्यान करता है अर्थात्? शुद्धात्मा की श्रद्धा, ज्ञान तो निरन्तर है परन्तु किसी समय ध्यान में भी अन्दर स्थिर हो जाता है। देखो, यह गृहस्थी को ध्यान कहा। **अणुदिणु झायहि** दूसरे कहते हैं, गृहस्थ को (ध्यान) नहीं होता। यहाँ देखो (क्या कहते हैं)? **गिहिवावार परट्ठिआ हेयाहेउ मुणंति। अणुदिणु झायहि** रात-दिन उसकी परिणति शुद्ध वर्तती होती है। शुद्ध आत्मा, पूर्णानन्द का आत्मा वह भगवानस्वरूप प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान की शुद्धपरिणति अर्थात् अवस्था कायम वर्तती है और किसी समय ध्यान भी निर्विकल्प हो जाता है, गृहस्थाश्रम में रहने पर भी.... आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा गृहस्थाश्रम में भी कहाँ आत्मा मिटकर गृहस्थाश्रम में विकार में हो गया है? गृहस्थाश्रम में रहनेवाला आत्मा कहाँ जड़ और शरीररूप हो गया है? तो जिस रूप हुआ नहीं, उसका त्याग क्या करना? अब जरा रागरूप पर्याय में विकाररूप हुआ है, उस विकार से (भिन्न) त्रिकालस्वभाव की दृष्टि होने पर (वह) विकार भी मैं नहीं हूँ – ऐसे दृष्टि होने पर उसमें विकार का दृष्टि में त्याग वर्तता है। समझ में आया? और उसे ध्यान वर्तता है। गृहस्थाश्रम में भी ध्यान (वर्तता है)। जिसे लक्ष्य में लिया है, जिसका

आदर किया है, उसमें बारम्बार स्थिरता की निर्विकल्पता, ध्यान भी उसे आता है क्योंकि वह प्रयोग है। सामायिक में.... यह सामायिक लोगों की नहीं, हाँ! स्वरूप शुद्ध है – ऐसा अनुभव होकर दृष्टि-ज्ञान हुआ तो सामायिक में प्रयोग करता है कि मैं परमात्मा हूँ तो पर्याय में उपयोग में रह सकता हूँ या नहीं? उसकी अजमाईश और प्रयोग का नाम सामायिक है और वह प्रतिदिन की; और पन्द्रह दिन में महीने में प्रौषध एकदम चौबीस घण्टे में प्रयोग करे कि आत्मा वहाँ रह सकता है या नहीं? अन्दर स्वरूप में कितना (रह सकता है)? इसकी अजमाईश के प्रयोग को प्रौषध कहते हैं। ए... भगवानभाई! हैं? यह बात है। सामायिक, प्रौषध और अन्त में संल्लेखना। यह बाद में देह के त्याग के काल में निर्विकल्प में – आनन्द में मैं कहाँ रह सकता हूँ? कितना भव के अभाव के काल में भव के अभाव की चीज में स्थिरता कितनी रहती है? इतना प्रयोग करने को समाधिमरण कहते हैं। समझ में आया? आज तो सब गृहस्थाश्रम का आया, हाँ! आहा...हा...! ए... बजुभाई! वे लोग चिल्लाहट मचाते हैं इसलिए।

गिहिवावार परट्ठिआ हेयाहेउ मुणंति प्रभु! तू कहाँ खो गया है कि जिससे तुझे हाथ न आवे? आहा...हा..! भगवान पूरा आत्मा, चैतन्य के तेज के पूर के नूर से भरपूर – ऐसा चैतन्य तत्त्व वह कहाँ गया है, प्रभु! कि तेरी नजर वहाँ नहीं पड़ती? नजर वहाँ पड़ने पर उस चैतन्य के पूर का आदर होने पर उसे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है, उस काल में गृहस्थाश्रम में यह दया, दान, व्रतादि के परिणाम उत्पन्न हों, उसका उस दृष्टि में त्याग वर्तता है। समझ में आया?

धर्मी जीव ने आत्मा के शुद्ध परमानन्द के आदर में, राग होता होने पर भी स्वभाव में अविद्यमान कहा है। अज्ञानी ने राग और पुण्य के आदर में भगवान विद्यमान त्रिकालनाथ विराजमान है, उसे अविद्यमान किया है। आहा...हा...! कहो, मनसुखभाई! कहो, अब गृहस्थाश्रम में धर्म हो सकता है या नहीं? या त्यागी होवे, बाबा होवे तब होता है? अरे...! तुझे पता नहीं है, आत्मा बाबा ही है। उसके स्वरूप में एक भी रजकण कहाँ प्रविष्ट हो गया है? एक भी रजकण.... फिर यह तो राग की पर्याय है, परन्तु एक रजकण शरीर, वाणी, मन का कोई रजकण आत्मा में है? रजकण आत्मारूप हुआ है? और आत्मा चाहे जितना

प्रयत्न करे तो रजकण को आत्मारूप कर सकता है ? कहो, और रजकण चाहे जितने अन्दर पलटें तो आत्मारूप हो सकते हैं ? अब रहा राग, अब रहा अन्दर पुण्य-पाप का राग – वह तो कृत्रिम मैल, क्षणिक मैल है। इस पूर्णानन्द में वह मैल प्रविष्ट हो जाता है और निर्मलानन्द भगवान उस मैलरूप हो जाता है ? समझ में आया ? शुभ-अशुभ राग जो है, वे दोनों मैल हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव शुभराग, वह मैल है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोग, वह अशुभरागरूपी मैल है। यह भगवान, उस मैल के पीछे निर्मलानन्द प्रभु विराजता है। वह निर्मलानन्द का नाथ इस मैलरूप होता है ? और मैल का कण उस निर्मलानन्द, पूर्णानन्द में प्रविष्ट हो जाता है ? आहा...हा... ! ए... रतिभाई ! ऐसे के ऐसे गाड़ी हाँक रखी है, अंधेरे... अंधेरे... क्या आत्मा ? क्या मार्ग ? क्या करना ? क्या छोड़ना ? कुछ विवेक नहीं और कहता है (कि) हम कुछ धर्म करते हैं, धूल में भी धर्म नहीं है।

अब क्या कहते हैं ? **लहु णिव्वाणु लहंति** यहाँ तो अभी गृहस्थाश्रम का वजन देते हैं। यहाँ गृहस्थाश्रम की बात चलती है न ? **गिहिवावार परट्ठिआ हेयाहेउ मुणंति। अणुदिणु झायहि देउ जिणु लहु णिव्वाणु लहंति॥** अल्प काल में इस गृहस्थाश्रम में रहनेवाला आत्मज्ञानी-धर्मी आत्मा के उपादेय को जाननेवाला, रागादि की हेयता को जाननेवाला अल्पकाल में केवलज्ञानरूपी निर्वाण को प्राप्त करेगा। गृहस्थाश्रम में रहनेवाला करेगा – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! हैं ? कहो, समझ में आया ? यह १८ वीं (गाथा पूर्ण) हुई।

एक 'तप' का शब्द लेना है। वे छह बोल हैं न ? छह हैं न ? श्रावक के कर्तव्य – देव पूजा, गुरु भक्ति, स्वाध्याय, संयम, और तप। इसमें स्वाध्याय में **तत्त्वज्ञान पूर्ण आध्यात्मिक शास्त्र पढ़ना....** यह लिखा है और तप में **प्रातः काल और सन्ध्या काल थोड़े समय तक आत्मध्यान का अभ्यास करना....** उसे तप कहा जाता है। गृहस्थाश्रम में तप का कर्तव्य.... गृहस्थाश्रम में तप का कर्तव्य अर्थात् क्या ? समझ में आया ? गृहस्थाश्रम में श्रावक के लिये सम्यक्त्वी जीव को षट्कर्म के शुभराग भाव हमेशा आते हैं – ऐसा वहाँ शास्त्र में वर्णन है। देव पूजा, गुरु सेवा... समझ में आया ? स्वाध्याय, संयम,

तप और दान.... तो कहते हैं कि तप करे अर्थात् क्या ? कि हमेशा जरा ध्यान का प्रयोग करे। विकल्प से पहले विचार करे – यह व्यवहार षट्कर्म हुआ और अन्दर में एकाग्र होवे। अन्दर ध्यान का प्रयोग करे, गृहस्थाश्रम में रहनेवाला समकिती अन्तर आनन्द के ध्यान का प्रयोग करके और अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करे, वह निश्चय आवश्यक कर्म हुआ और मैं ध्यान करता हूँ – ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ, वह तो व्यवहार षट्कर्म में गया। समझ में आया ? आहा...हा... ! लो, यह बात हुई। फिर तो बहुत लम्बा किया है, हाँ! अब १९ गाथा।

☆ ★ ☆

जिनेन्द्र का स्मरण परम पद का कारण है

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण॥१९॥

जिन सुमरो निज चिन्तवो, जिन ध्यावो मन शुद्ध।
जो ध्यावत क्षण एक में, लहत परम पद शुद्ध॥

अन्वयार्थ – (**सुमणेण**) शुद्धभाव से (**जिणु सुमिरहु**) जिनेन्द्र का स्मरण करो (**जिण चिंतवहु**) जिनेन्द्र का चिन्तवन करो (**जिण झायहु**) जिनेन्द्र का ध्यान करो। (**सो झाहंतह**) ऐसा ध्यान करने से (**एक्कखणेण**) एक क्षण में (**परमपउ लब्भइ**) परमपद प्राप्त हो जाता है।

☆ ★ ☆

जिनेन्द्र का स्मरण परम पद का कारण है। १९, १९।

जिणु सुमिरहु जिणु चिंतवहु, जिणु झायहु सुमणेण।
सो झायंतहँ परम-पउ, लब्भइ एक्क-खणेण॥१९॥

हे आत्मा ! वीतराग परमेश्वर और तेरा आत्मा, दोनों के स्वभाव में कोई अन्तर नहीं है। पर्याय – अवस्था में, हालत में, दशा में (अन्तर है)। भगवान की दशा पूर्ण निर्मल हो

गयी, तेरी दशा में राग का मैल है परन्तु वस्तु के स्वभाव में और भगवान के स्वभाव में कुछ अन्तर नहीं है। आहा...हा...! तो कहते हैं। **शुद्धभाव से....** देखो! **सुमणेण** का अर्थ किया। **शुद्धभाव से जिनेन्द्र का स्मरण करो....** भगवान आत्मा... जैसे सगे-सम्बन्धियों को याद करते हैं न? पाप किया हो तो याद करते हैं या नहीं? पुण्य किया हो तो याद करते हैं या नहीं? किसी के साथ बहुत स्नेह हुआ हो तो याद करते हैं या नहीं? इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति परमेश्वर केवलज्ञानी ने आत्मा देखा है, वैसा जिसे श्रद्धा-ज्ञान में जमा, ऐसे धर्मी जीव उसका बारम्बार स्मरण करते हैं। राग का नहीं, निमित्त का नहीं, संयोग का नहीं। समझ में आया?

शुद्धभाव से जिनेन्द्र का स्मरण करो.... जिनेन्द्र अर्थात् आत्मा, हाँ! आहा...हा...! यह गाथा में आता है। यह तो कहना यह चाहते हैं, वहाँ कहाँ पर की बात है? जिनेन्द्र भगवान आत्मा, उसका स्वभाव वीतराग का इन्द्र / ईश्वर है। वीतरागी ईश्वर आत्मा.... कैसे जँचे? रंक होकर बैठा, एक बीड़ी बिना चले नहीं, उड़द की दाल अच्छी सींजी न हो तो चले नहीं, हाँ! एक प्रतिष्ठा में जरा थोड़ी कमी आवे तो हैं... ऊं... ऊं... ऊं.... हो जाये। रतिभाई! हैं। ऐसा हो जाये, निराश हो जाये। अरे... धक्का लग गया, इज्जत में धक्का (लग गया)। परन्तु अनादि से बड़ी इज्जत में धक्का लगा है।

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु जिनवर समान आत्मा, यह उसे रागवाला मानना, महाकलंक लगा है तुझे। आहा...हा...! समझ में आया? देखो! इन्होंने लिखा है, हाँ! **जिनेन्द्र के स्वभाव में और अपनी आत्मा के मूल स्वभाव में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। जिन चिन्तवो....** चिन्तवन करो। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है, उसका चिन्तवन कर न! यह राग और दया-दान, व्रतादि के विकल्प हैं, वे तो छोड़ने योग्य हैं। उन्हें बारम्बार याद किसलिए करता है? आवे तो भी याद किसलिए करता है? – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जिनेन्द्र प्रभु आत्मा... क्योंकि प्रत्येक गुण वीतरागस्वभाव के ईश्वरवाला गुण है। ऐसा जिनेन्द्र प्रभु आत्मा, साक्षात् वस्तुरूप है। उसकी दशा में प्रगटता करने के लिये ऐसे जिनेन्द्र भगवान का एकाग्र होकर ध्यान करना, वह प्रगट जिनेन्द्र होने का उपाय है। समझ

में आया? दूसरा जिनेन्द्र भगवान दे नहीं देते, हाँ! कोई कर्ता नहीं (कि) वे दे दे। आहा...हा...! उस पर ईश्वर के पास तेरा ईश्वरपना नहीं पड़ा है; तेरा ईश्वरपना तुझमें पड़ा है। अन्दर ज्ञान ईश्वर, दर्शन ईश्वर, आनन्द ईश्वर, स्वच्छता ईश्वर, प्रभुता ईश्वर, अस्तित्व ईश्वर, वस्तुत्व ईश्वर – ऐसे अनन्त ईश्वरता का स्वामी आत्मा है। इसे किस प्रकार (जँचे)? कभी आत्मा क्या है? – उसका पता नहीं होता और यह करो, यह करो, यह करो, यह करो, पूजा करो, भक्ति करो, दया करो, दान करो, हो जायेगा धर्म.... धूल में भी धर्म नहीं है। अब सुन न! यह तो राग की मन्दता होवे तो कुछ पुण्य बाँधे और चार गति में चौरासी के धक्के खायेगा। शान्तिभाई! आहा...हा...!

परमेश्वर घर में विराजे और उसका आदर न करे और एक नीच जाति की स्त्री ऐसे सड़े हुए रोगवाली हो, उसका आदर करे, आओ... आओ... भगवान विराजे, ऐसे दो चीज सामने है – एक परमात्मा विराजते हैं आहा...हा...! ऋषभदेव लो न, छह महीने और बारह महीने आहार लेने आये न? श्रेयांसकुमार के घर आहा...हा...! प्रभु! पधारो... पधारो... पधारो... हमारा आँगन उज्ज्वल है। उस समय कोई नीच कुलीन स्त्री निकले, क्षय रोगवाली और सोलह रोगवाली बाई आयी हो, उसका आदर करे... इसी प्रकार भगवान तीन लोक का नाथ परमात्मा स्वयं समीप में स्वयं विराजमान है, उसका आदर न करके पुण्य और पाप, भिखारी जैसे मैल विकार और धूल इस शरीरादिक का सत्कार करे तो वह कहीं विवेकी नहीं कहा जाता है। समझ में आया?

जिनसमरो.... स्मरण करो अर्थात् उसे बारम्बार याद करो। आहा...हा...! यह तो पहले देखा है न? देखे बिना क्या (याद करे)? भगवान शुद्ध चैतन्य है, पुण्य-पाप का राग, वह मैल है, शरीरादि क्रियाएँ इस जड़ की मिट्टी, धूल की हैं – ऐसा जिसे पहले सम्यग्ज्ञान में विवेक प्रगट हुआ है, दर्शन किया है, धारणा हुई है, उसमें से स्मरण करता है, उसमें से याद करता है। इसमें क्या समझे? यह स्मरण अर्थात् क्या? यह जातिस्मरण, इसका अर्थ क्या है? इससे पूर्व धारा था, उसमें से याद आना, इसी प्रकार इस आत्मा को पहले धारा था कि यह पवित्र और शुद्ध है, विकार रहित है – ऐसा श्रद्धा और ज्ञान में धारा था। उसे बारम्बार याद करना, उसे आत्मा का स्मरण कहा जाता है। आहा...हा...! समझ में आया?

बीस वर्ष का लड़का ऐसे दो वर्ष के विवाह उपरान्त मर गया हो तो फिर उसकी माँ ऐसी रोती है.... ए.... पुत्र! तू कहाँ गया? एक माँ तो उसकी पीछे मर गयी। छह महीने के विवाह उपरान्त लड़का मर गया। गृहस्थ मनुष्य दस लाख रुपये के आसामी, उसकी माँ छह महीने के (विवाह के बाद) वह मर गया तो रो-रो कर मर गयी। पूरे दिन याद करे, उसका पति कहे परन्तु किसलिए (रोती हो)? अब गया, पैसा है, खाने का साधन है और अपने दूसरा लड़का है परन्तु वह दरवाजा बन्द करके अन्दर पलंग पर रोती ही रहे। जो कोई देखने जाये तो फफक-फफक कर रोती रहे, उसे याद करे, ऐसा मेरा कहना है। उसे याद करे उसका नाम स्मरण। उसकी होली लगाई।

यह भगवान चिदानन्द प्रभु समीप में विराजमान हैं और आनन्द का कन्द प्रभु, उसका स्मरण कर न बारम्बार! वह पुत्र का स्मरण करने से आवे ऐसा है? इसका स्मरण करने से प्रगट हो – ऐसा है? प्रवीणभाई! हैं? यह तो सब भाव भाई अन्दर बहुत भरे होते हैं। थोड़े-थोड़ आते हैं। यह तो आचार्यों के शब्द हैं न? एकदम मार्मिक हैं न?

वीतरागभाव को याद कर – ऐसा कहते हैं। लो! दूसरी लाईन। यह अन्दर राग और पुण्यभावना आवे, उसे याद मत कर, लक्ष्य में से छोड़ दे; वे याद करने योग्य नहीं हैं। जहर को याद करने जैसा नहीं है। पुण्य-पाप के भाव याद करने योग्य नहीं हैं। आहा...हा...! भगवान आत्मा पवित्र का धाम प्रभु याद करने योग्य है, स्मरण करने योग्य है। उसका स्मरण तुझे हित का कारण है। समझ में आया? **चिन्तवन करो....** दूसरा शब्द है, वह आयेगा।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)